इकाई 6 शिल्प उत्पादन, विनिर्माण और कारीगर समूह*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कृषि–आधारित उत्पादन

6.2.1 वस्त्र उद्योग

6.2.2 नील

6.2.3 चीनी, तेल आदि

6.3 खनिज, खनन और धातु

6.3.1 खनिज उत्पादन

6.3.2 धातु

6.4 काष्ठ–आधारित शिल्प

6.5 अन्य शिल्प

6.6 उत्पादन का संगठन

6.7 सारांश

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उ्ददेश्य

हमारे अध्ययन के काल के दौरान भारत में उच्चकोटि का शिल्प उपलब्ध था। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- भारत में उत्पादित विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बारे में जान सकेंगे;
- खास–खास शिल्पों के प्रमुख केन्द्रों का उल्लेख कर सकेंगे;
- देश के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले खनिजों की जानकारी हासिल कर सकेंगे;
- कुछ वस्तुओं के उत्पादन में अपनाई जाने वाली तकनीकों के बारे में जान सकेंगे; और
- कुछ शिल्पों के उत्पादन के संगठन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

हम जिस काल का अध्ययन कर रहे है उस काल में शिल्प उत्पादन का स्तर काफी ऊंचा था। यह शिल्प उत्पादन व्यापार और वाणिज्य की पद्धति से जुड़ा हुआ था। हम मुख्य वाणिज्यिक केन्द्रों में और उसके आसपास उत्पादन संबंधी गतिविधियों में एक प्रकार की सक्रियता पाते है।

*प्रो. सुरेन्द्र गोपाल, इतिहास विभाग, पटना यूनिवर्सिटी, पटना। यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम **ई एच आई 04 गैर–कृषि उत्पादन खंड 6, इकाई 22** का पुनर्प्रकाशन है।

फारसी ऐतिहासिक अभिलेखों से शिल्प और उत्पादन की तकनीक की कम जानकारी मिलती है। इस क्षेत्र में यूरोपीय यात्रियों के वृतान्तों और दस्तावेजों तथा विभिन्न यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के पत्र व्यवहार से ज्यादा व्यापक सूचना मिलती है। ये कम्पनियाँ उत्पादन की प्रक्रिया और उत्पादन की गुणवत्ता का गौर से निरीक्षण करती थी।

शिल्प उत्पादन मूल रूप से घरेलू बाजार की मांग और खपत से निर्देशित होता था। 17वीं शताब्दी में विदेशी बाजारों से मांग बढ़ने लगी और इससे यहाँ की उत्पादन गतिविधि प्रभावित होने लगी।

इस इकाई में हम प्रमुख शिल्प, उनके केन्द्रों, उपयोग में आने वाले कच्चे मालों और जहाँ संभव होगा उत्पादन की तकनीकों की भी चर्चा करेंगे। हम खनिजों की उपलब्धता और उनके उत्पादन पर भी विचार करेंगे। हम कुछ चुने हुए शिल्पों में उत्पादन के संगठन का भी विश्लेषण करेंगे।

6.2 कृषि–आधारित उत्पादन

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आज के संदर्भ में कृषि आधारित उद्योगों का इस्तेमाल कुछ विशिष्ट प्रकार के उद्योगों के लिए होता है। यहाँ हम इसका प्रयोग उन उद्योगों के लिए कर रहे हैं जिनमें कच्चा माल कृषि उत्पादों से आता था।

जिस काल का हम अध्ययन कर रहे है उस काल में अधिकांश उत्पादन उन क्षेत्रों में था जिनमें कच्चे माल की आपूर्ति कृषि उत्पाद से होती थी। **बी एच आई सी–109 की इकाई 14** पढ़ते समय हमने गौर किया था कि हमारे यहाँ कपास, गन्ना, नील, तम्बाकू जैसी उच्च कोटि की फसलों का उत्पादन होता था। अतः इनसे जुड़े शिल्पों का विकास स्वाभाविक था। आइए पहले कपड़ा उत्पादन पर विचार करें।

6.2.1 वस्त्र उद्योग

वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत हम मुख्य रूप से सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों के उत्पादन का अध्ययन करेंगे।

सूती कपड़ा

उप–हिमालय क्षेत्र को छोड़कर लगभग पूरे भारत में सूती कपड़ा बनाया जाता था क्योंकि कपास की पैदावार लगभग हर जगह होती थी। अबुल फ़ज़ल ने सूती कपड़े के उत्पादन के विभिन्न केन्द्रों का नामोल्लेख किया है।

गुजरात वस्त्र उत्पादन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक था। यहाँ अहमदाबाद, भड़ौच, बड़ौदा, खम्भात, सूरत आदि जैसे प्रमुख उत्पादन केन्द्र थे। राजस्थान में अजमेर, सिरोंज और कई छोटे शहरों में कपड़ा बनाया जाता था। उत्तर प्रदेश में लखनऊ और इसके आसपास के कई शहरों जैसे बनारस, आगरा, इलाहाबाद आदि में कपड़े का उत्पादन होता था। उत्तर में दिल्ली, सिरहिंद, समाना, लाहौर, सिआलकोट, मुलतान और थट्टा जैसे क्षेत्रों में उत्तम कोटि का कपड़ा बनाया जाता था। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में सोनारगाँव, ढाका, राजमहल, कासिम बाजार, बालासोर, पटना और कई छोटे–छोटे शहरों में कपड़ा बनाया जाता था।

दक्खन में, बुरहानपुर और औरंगाबाद में उत्तम कोटि के सूती वस्त्र निर्मित किए जाते थे। महाराष्ट्र के पश्चिमी तट पर चोल और भिवण्डी कपड़ा बनाने के प्रमुख केन्द्र थे। दक्षिण में कोयम्बटूर और मालाबार में भी अच्छी कोटि के वस्त्र बनाए जाते थे।

कई केन्द्रों में केवल सूत काता जाता था, उसे बुनाई केन्द्रों में और यहाँ तक कि विदेश में भी भेजा जाता था। इस प्रकार धागे की कताई एक विशेषीकृत व्यवसाय बन गया। वस्त्र उत्पादन के प्रमुख केन्द्रों और उसके आसपास के इलाकों में किसानों और महिलाओं ने इसे अपनी आय का अतिरिक्त साधन बना लिया और बुनकरों को धागे की आपूर्ति करने लगे।

मैसूर, विशाखापट्टनम और गंजम में महिलाएँ बड़ी संख्या में सूत काता करती थीं। भड़ौच, कासिम बाजार और बालासोर धागे की बिक्री के प्रमुख बाजार थे। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुजरात बंगाल को सूत की आपूर्ति किया करता था। ढ़ाका मलमल के लिए परिष्कृत सूत की जरूरत होती थी जिसे महिलाएँ तकली की सहायता से काता करती थीं।

कपड़े की कई कोटियां उपलब्ध थी, हमीदा नकबी ने मुगल साम्राज्य के पांच प्रमुख उत्पादन केन्द्रों में उत्पादित उनचास प्रकार के कपड़ों का नामोल्लेख किया है। यूरोपीय दस्तावेजों में एक सौ से अधिक नामों का उल्लेख है। देश में उत्पादित होने वाले सूती कपड़ों की सभी कोटियों का उल्लेख करना बहुत मुश्किल है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्टताएँ थी।

इनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जा सकती है। *आइन–ए–अकबरी* में **वापता** नामक उच्च कोटि के सूती वस्त्र का उल्लेख हुआ है जो आमतौर पर सफेद या एक रंग का होता था। यूरोपीय सभी प्रकार के सूती वस्त्रों के लिए 'कैलिकों' शब्द का प्रयोग करते थे। इसका मतलब मोटा उजला कपड़ा भी होता था। **ताफता** रेशमी कपड़ा होता था जिसमें कभी–कभी सूती धागे भी बुने गए होते थे। **जरतरी** कपड़े में सोने या चांदी के तार बुने होते थे। मलमल मोटे सूती कपड़े का एक उत्तम प्रकार था **छींट** सूती कपड़े में फूल–पत्ती या अन्य प्रकार के डिजाइन बने होते थे। खासा मलमल का ही एक प्रकार था। यह उत्तम कोटि का महंगा कपड़ा था। (इरफान हबीब ने पकड़ों की शब्दावली की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है, देखिए *एन एटलस ऑफ द मुगल अम्पायर*, पृ.69–70)

कुछ कपड़ों का नाम उनके उत्पादन स्थल पर आधारित था जैसे दरियाबादी और खैराबादी, समिआना (समाना) लखौरी(पटना के निकट लखावर) आदि। कुछ प्रदेशों में खास प्रकार के कपड़े ही बनाये जाते थे, गुजरात में **बाफता**, सोनारगांव और ढाका में **मलमल** आदि इस प्रकार की विशेषता के उदाहरण है। इग्लिश, डच और फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनियाँ आदि के आने से यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की गतिविधियों में तेजी आई और उसके कारण सत्रहवीं शताब्दी में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

सूत्री वस्त्रों में उच्च कोटि के उजला सादे सूती कपड़े की मांग सबसे ज्यादा थी। इसे विभिन्न नामों से जाना जाता था–बिहार और बंगाल में **अम्बरती**, गुजरात में **बाफता** आदि। बंगाल का मलमल जिसको खासा कहते थे छींट, रंगीन वस्त्र और रेशम के धागों को मिलाकर बनाए गए कपड़े, कुछ महत्त्वपूर्ण कोटियाँ थी। अहमदाबाद अपने रंगीन कपड़े छींट के लिए प्रसिद्ध था।

कपड़ा उत्पादन में कई चरणों से गुजरना होता था। सबसे पहले ओटाई होती थी, जिसमें कपास से बीज अलग किया जाता था। बाद में धुनियाँ अपने धनुषाकार यंत्र से कपास या रूई को साफ करता था इसके बाद तकली पर इस रूई से धागा बनाया जाता था। बुनकर

करघे पर इस धागे से वस्त्र बुनते थे। आमतौर पर प्रचलित करघा क्षैतिज होता था जिसे पैर के पास लगे पैडल से चलाया जाता था।

बना हुआ कपड़ा अभी भी अपरिष्कृत रूप में होता था। उपयोग में लाने के पहले इसका रंग उड़ाया जाता था (सफेद किया जाता था) या रंगा जाता था। यह काम एक अलग समुदाय द्वारा सम्पन्न किया जाता था। हालांकि यह प्रक्रिया हर जगह अपनाई जाती थी पर कुछ केन्द्र प्रसिद्ध हो गए। पानी की खासियत की वजह से गुजरात में भड़ौंच कपड़ों को विरंजित (रंग उड़ाने के लिए) करने के लिए प्रसिद्ध हो गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी आगरा, लाहौर आदि से बाफता खरीदती थी और उसे भड़ौंच और नवसारी में विरंजित करने के बाद ही निर्यात करती थी। अहमदाबाद, सूरत, पटना, सोनारगांव, ढ़ाका, मसूलीपट्टम आदि शहरों में भी बड़े पैमाने पर कपड़ो ंको विरंजित करने का काम किया जाता था।

कपड़ों के विरंजन के लिए उन्हें पानी में सोखा जाता था (उत्कृष्ट कपड़े) या विशेष घोल में उबाला जाता था।

रंगाई और छपाई भी विशेषीकृत व्यवसाय हो गए थे। कपड़ा रंगने वाले को **रंगरेज** कहते थे और उन्हें एक अलग जाति का माना जाता था। आमतौर पर सब्जियों के रंगों का उपयोग किया जाता था। लाल रंग चै या लाख से और नीला रंग नील से प्राप्त किया जाता था।

रेशम (सिल्क)

रेशम से भी कपड़ा बनाया जाता था। अबुल फजल बताता है कि कश्मीर में बड़ी मात्रा में रेशम के कपड़े बनाए जाते थे। पटना और अहमदाबाद भी रेशम वस्त्र के लिए जाने जाते थे। बनारस का भी इस क्षेत्र में नाम था। सत्रहवी शताब्दी में बंगाल में रेशम का सबसे ज्यादा उत्पादन हुआ जिसे विदेश और भारत के अन्य हिस्सों में निर्यातित किया गया। बंगाल में कासिम बाजार और मुर्शिदाबाद में रेशम के वस्त्र बनाए जाते थे। 17वीं शताब्दी के मध्य के आसपास 25 लाख पाउंड के करीब प्रति वर्ष उत्पादन होने का अनुमान लगाया गया था। लगभग साढ़े सात लाख पाउंड केवल डच व्यापारी ही अपरिष्कृत रूप में ले जाते थे। 1618 ई. में लंदन के रेशम बुनकरों ने इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा इसके आयात पर प्रतिबंध लगाने के लिय ब्रिटिश संसद को एक प्रतिवेदन दिया। 1701 ई. में बंगाल के रेशम वस्त्रों का आयात रोक दिया गया। इसके बावजूद बंगाल रेशम वस्त्र उत्पादन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना रहा।

ऊन

कपड़ा बनाने के लिए ऊन का भी उपयोग किया जाता था। इसमें कश्मीर की शॉल सबसे प्रसिद्ध थी जिसे पूरी दुनिया में निर्यातित किया जाता था। इन शॉलों में उपयोग में लाया जाने वाला उत्कृष्ट ऊन तिब्बत से आयातित किया जाता था। उत्कृष्ट कोटि के ऊनी वस्त्रों का आयात व्यापारी आमतौर पर उच्च वर्ग के लिए किया करते थे। लगभग पूरे उत्तर भारत में ऊन से कम्बल बनाए जाते थे।

इसके अलावा सूती दरियाँ, कालीन (रेशमी और ऊनी) तम्बू और रजाइयाँ आदि भी बनाई जाती थीं। कालीन बुनाई कपड़ा उत्पादन की एक अन्य शाखा थी। उत्तर में बिहार (दाउदनगर, ओबल आदि) दिल्ली, आगरा, लाहौर, मिर्जापुर आदि इसके प्रमुख केन्द्र थे। दक्षिण में वारंगल भी कालीन बनाने के लिए प्रसिद्ध केन्द्र था। कोरोमंडल तट पर स्थित

मसुलीपट्टम में भी कालीन बनाई जाती थी। कालीन काफी मात्रा में नहीं बनाए जाते थे और अभी भी ईरानी कालीनों का ही उपयोग होता था। अकबर ने ईरानी ढंग के रेशमी कालीनों को राजकीय कारखाने में बनवाने में रूचि दिखाई।

तम्बुओं का उपयोग मुख्य रूप से सम्राट और उनके सरदार किया करते थे। इसलिए उनकी भी जरूरत पड़ती थी। अबुल फजल ने ग्यारह प्रकार के तम्बुओं का उल्लेख किया है। उनके आकार प्रकार में काफी विभिन्नता होती थी।

विभिन्न प्रकार के कपड़ों की सूती रेशमी या चांदी और सोने के धागे से कढ़ाई भी कपड़ा उद्योग से जुड़ा एक शिल्प था। काफी संख्या में शिल्पियों ने यह व्यवसाय अपना रखा था।

6.2.2 नील

पूरे देश में और विदेश में भी इसकी मांग काफी अधिक थी। जैसा कि हमने **बी एच आई सी–109 की इकाई–14** में पढ़ा है कि नील की खेती बड़े पैमाने पर की जाती थी।

केवल पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर पूरे देश में नील की खेती की जाती थी। इसकी उत्कृष्ट कोटि आगरा के निकट बयाना में पाई जाती थी। इसके बाद अहमदाबाद के निकट सरखेज का स्थान आता है, यह नीले रंग का होता था और रंगाई के काम आता था, इसलिए पूरे देश में और विदेश में भी इसकी मांग थी।

गुजरात में जम्बुसार, भड़ौच, बड़ौदा आदि में भी नील से रंगाई होती थी। उत्तर भारत में आगरा और लाहौर में बड़ी मात्रा में नील की खरीद बिक्री होती थी। कोरोमंडल तट पर मसूलीपट्टम भी नील का प्रमुख बाजार था।

इसमें से रंग निकालना काफी आसान था। पौधों को पानी से रख दिया जाता था। जब नील पानी में घुल जाता था, तो उसे दूसरे हौज में डाल दिया जाता था, जहाँ नील तल में बैठ जाता था, इसे छान कर टिक्की के रूप में सुखा लिया जाता था। अधिकांशतः किसान ही नील निकालने का काम किया करते थे।

6.2.3 चीनी, तेल आदि

पूरे देश में गन्ना उपजाया जाता था और बड़े पैमाने पर इससे चीनी निकाली जाती थी। आमतौर पर गन्ने से तीन प्रकार के उत्पाद निकाले जाते थे; गुड़, चीनी और मिसरी। सभी गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में गुड़ बनाया जाता था और स्थानीय तौर पर इसका उपभोग किया जाता था। अन्य दो प्रकार मुख्य रूप से बंगाल, उड़ीसा, अहमदाबाद, लाहौर, मुल्तान और उत्तरी भारत के हिस्सों में बनाए जाते थे। 17 वीं शताब्दी के दक्खन के बारे में लिखते हुए थिविनो बताता है कि गन्ना उपजाने वाले सभी किसानों के पास अपनी भट्टी होती थी। अबुल फ़जल के अनुसार एक मन चीनी का मूल्य लगभग 128 दाम था, जबकि मिसरी का मूल्य प्रति मन 220 दाम था।

गन्ने को कोल्हू में दबाकर उससे रस निकाला जाता था, यह कोल्हू या तो हाथों से चलाया जाता था या फिर पशुओं की सहायता ली जाती थी। गुड़ या चीनी बनाने के लिए गन्ने के रस को चौड़े बर्तनो में भट्टी पर चढ़ा दिया जाता था। रस को उबालने के दौरान ही विभिन्न प्रकार के गुड़ या चीनी बनाई जाती थी। बंगाल की चीनी उत्तम कोटि मानी जाती थी और यूरोप तथा ईरान में इसकी व्यापक मांग थी।

तेल भी अधिकांशतः ग्रामीण आधारित उद्योग में ही आता था। तेल के बीज को कोल्हू में डाल दिया जाता था और बीज से तेल निकल आता था। कोल्हू हाथों से भी चालाया जाता था और इसे चलाने में पशुओं की भी सहायता ली जाती थी। तेल निकालने वाली जाति को तेली कहते थे। बचा हुआ उत्पाद (खल्ली) जानवरों को खिलाया जाता था।

बोध प्रश्न–1

1) कपड़ा उत्पादन के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों के नाम बताइए।

....

....

....

2) भारत में रेशम उत्पादन पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

3) भारत में पैदा होने वाले नील के मुख्य प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

6.3 खनिज, खनन और धातु

16 वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान भारत में गहरा खनन नहीं किया जाता था, बल्कि विभिन्न प्रकार के खनिजों और धातुओं के लिए धरती के ऊपरी स्तर में ही खनन किया जाता था।

6.3.1 खनिज उत्पादन

नमक एक अनिवार्य खाद्य वस्तु थी और भारत इसमें आत्म निर्भर था। राजपूताना में सम्भर झील, पंजाब में नमक पत्थर की खानें और समुद्र का पानी इसका मुख्य स्रोत था। सिंध, कच्छ, गुजरात के तटवर्ती प्रदेशों, मालाबार, मैसूर, बंगाल, आदि में समुद्र के पानी से नमक बनाया जाता था। नमक हर जगह नहीं पाया जाता था अतः यह प्रान्तीय और अन्तर्प्रान्तीय व्यापार की एक मुख्य वस्तु था।

शोरा एक प्रमुख खनिज पदार्थ था। यूरोप में इसकी खूब मांग थी। इससे बारूद बनाया जाता था। आरंभ में शोरा अहमदाबाद, बड़ौदा आदि में ही निकाला जाता था, पर बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए दिल्ली–आगरा क्षेत्र में भी इसका निर्माण शुरू हो गया। सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिहार में पटना शोरा बनाने का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। पटना के आसपास के क्षेत्रों में शोरा इकट्ठा किया जाता था और उसे नाव द्वारा गंगा के रास्ते हुगली और फिर यूरोप ले जाया जाता था।

मिट्टी मिले शोरे से शोरा निकालना एक आसान विधि थी। जमीन पर छिछले हौज बनाए जाते थे, उसमें मिट्टी मिले शोरा को डाल दिया जाता था। शोरा पानी में घुल जाता था और मिट्टी नीचे जम जाती थी। इसके बाद बड़े बर्तनों में शोरा पानी को उबाला जाता था, पानी वाष्प बनकर उड़ जाता था और शोरा प्राप्त किया जाता था। भारतीय कारीगर मिट्टी का बर्तन उपयोग करते थे। टवैर्नियर (17वीं शताब्दी) के अनुसार डच हॉलैंड से आयातित तांबे के बर्तनों में उबालने का काम करते थे। एक स्रोत के अनुसार एक वर्ष (1688) में केवल बिहार में ही दो लाख मन से ज्यादा शोरा का उत्पादन होता था।

छोटे पैमाने पर फिटकरी और अभ्रक जैसे अन्य खनिजों का भी उत्पादन होता था।

6.3.2 धातु

सही मायने में भारत में सोने और चाँदी की खाने नहीं थीं। कोलार की प्रसिद्ध सोने की खान का पता नहीं लग पाया था। नदी तल से थोड़ी बहुत मात्रा में सोना निकाला जाता था, पर इसमें इसके मूल्य से लागत ज्यादा हो जाती थी। फिच (1584) ने बिहार में नदी की रेत से सोना निकालने की विधि का उल्लेख किया है। इसी प्रकार दूसरे प्रान्तों में भी नदी तलों में सोना पाया जाता था।

चाँदी की आपूर्ति अधिकांशतः आयात से ही होती थी। सिक्का बनाने के लिए सोने और चाँदी का उपयोग किया जाता था। गहना बनाने के लिए भी इनका खूब उपयोग होता था तथा लोग इसे बहुमूल्य धातु के रूप में अपने पास जमा भी रखते थे।

राजस्थान ताम्र उत्पादन का प्रमुख केन्द्र था। खेतरी में ताँबे की खाने थीं। इनमें ज्यादातर ताँबे का उपयोग सिक्का बनाने के लिए किया जाता था। इससे छोटे बड़े बर्तन और घरेलू उपयोग की वस्तुएँ बनाई जाती थी।

भारत में लोहा काफी मात्रा में पाया जाता था। लोहे की खानें भारत के उत्तर, पूर्व, पश्चिम, मध्य और दक्षिण भागों में पाई जाती थी। अबुल फजल ने बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, बिहार, गुजरात, दिल्ली और कश्मीर को प्रमुख लौह उत्पादक क्षेत्र बताया है। बिहार में छोटानागपुर और इससे लगे उड़ीसा के इलाकों में लोहा बड़ी मात्रा में पाया जाता था। दक्षिण में पाए जाने वाले लोहे से इस्पात बनाया जाता था। लोहे का उपयोग हल, कुल्हाड़ी, कील, पेंच, तलवार, खंजर आदि बनाने के लिए किया जाता था। दक्षिण, खासकर गोलकुण्डा में बनाए जाने वाले इस्पात से तलवारें बनाई जाती थी जिसकी सारी दुनियाँ में माँग थी।

कुछ दूसरे धातु भी थोड़ी मात्रा में उत्पादित किए जाते थे। उत्तर और पश्चिमी भारत में सीसा पाया जाता था।

हीरे का खनन

भारत के कुछ हिस्सों में हीरों का खनन किया जाता था पर गोलकुण्डा की खान सर्वाधिक प्रसिद्ध थी। दूसरे स्थानों में बरार में बीरागढ़, मध्यप्रदेश में पन्ना, बिहार में छोटानागपुर या खोखरा उल्लेखनीय है।

6.4 काष्ठ–आधारित शिल्प

लकड़ी से कई प्रकार के शिल्प जुड़े हुए थे। लकड़ी निर्मित आवागमन के साधनों में पालकी

और बैल गाड़ी प्रमुख थे। इन्हें कई शैलियों में बनाया जाता था और अमीर लोग इसमें नक्काशी करवाते थे, और सुसज्जित करवाते थे। भारत में लंबा तटीय प्रदेश था और उत्तर भारत में कई नदियाँ थी। इस कारण भारत में हमेशा से नौकाओं और जहाजों की जरूरत रही है।

कई प्रकार की नौकाओं का निर्माण किया जाता था। छोटी आकार की नौकाओं से लेकर बड़ी–बड़ी भारवाहक नौकाओं का निर्माण किया जाता था।

अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के बंदरगाहों जैसे थाट्टा, सूरत, बसीन, गोवा, क्रैगनोर, कोचिन, मसूलीपट्टम, नारस–हरिहरपुर, सतगाँव और चटगाँव प्रमुख निर्माण केन्द्र थे। जब यूरोपवासियों की गतिविधियों में तेजी आई तो उन्होंने अपने जहाजों की इन्हीं केन्द्रों में मरम्मत करवानी शुरू कर दी। यहाँ बने जहाज उन्हें पूर्वी समुद्रों के लिए उपयुक्त लगे और उन्होंने भारत में बने जहाज भी खरीदे। इस प्रकार यूरोपवासियों की इस बढ़ती मांग के कारण 17 वीं–18वीं शताब्दी में जहाज निर्माण उद्योग में तेजी से प्रगति हुई। दरवाजा, खिड़की और घरेलू लकड़ी के सामान जैसे बकसे, खाट आदि बनाने में भी लकड़ी का उपयोग होता था। समृद्ध लोग उत्कृष्ट कोटि की लकड़ी का फर्नीचर बनवाते थे।

बोध प्रश्न–2

1) भारत में शोरा उत्पादन पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

2) निम्नलिखित के प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए :

i) हीरा खनन ....

....

ii) जहाज निर्माण ....

....

6.5 अन्य शिल्प

प्रत्येक क्षेत्र का अपना विशेष शिल्प होता था। यहाँ उन सभी शिल्पों पर विस्तार से विचार करना संभव नहीं इसलिए हमे केवल महत्त्वपूर्ण शिल्पों का ही जिक्र करेंगे।

पत्थर कटाई एक महत्त्वपूर्ण शिल्प था क्योंकि इसका उपयोग घर, महल, किला, मन्दिर, आदि बनाने में किया जाता था। भारतीय पत्थर शिल्पी अपनी कारीगरी के लिए प्रसिद्ध थे।

गैर–कृषि उत्पादों में चमड़े की वस्तुओं जैसे जूता, चप्पल, पुस्तकों की जिल्द आदि का विशेष महत्व है। इनका निर्माण पूरे देश में होता था।

कागज

विवेच्य काल में अहमदाबाद, दौलताबाद, लाहौर, सियालकोट, पटना के निकट बिहार शरीफ, आदि स्थानों पर कागज बनाया जाता था। अहमदाबाद में भी कई प्रकार के कागज बनाए

जाते थे और इसे अरब देशों, तुर्की और फारस को निर्यातित किया जाता था। कश्मीर का कागज भी प्रसिद्ध था।

उत्तर भारत में कई स्थानों पर कागज बनाया जाता था और उसका स्थानीय उपयोग होता था। दक्षिण भारत में इसका उत्पादन कम होता था। अधिकांश कागज हाथ का बनाया होता था और यह साधारण कोटि का होता था।

मिट्टी के बर्तन

समकालीन दस्तावेजों को देखने से पता चलता है कि उस समय लोग खाना बनाने, पानी और अनाज रखने आदि के लिए मिट्टी के बर्तन का उपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त सभी घरों की छत खपड़ैल की हुआ करती थी। मिट्टी से बने बर्तनों की माँग अवश्य ही काफी अधिक थी। भारत के प्रत्येक बड़े गांव में एक कुम्हार होता था, जो प्रतिदिन काम में आनेवाले मिट्टी के बर्तन बनाया करता था।

साधारण मिट्टी के बर्तनों के अलावा चीनी मिट्टी के परिष्कृत बर्तन भी बनते थे। मनुची (1663) बताता है कि खानपान के लिए बने मिट्टी के परिष्कृत बर्तन शीशे से ज्यादा बारीक और उत्कृष्ट और कागज से ज्यादा हल्के हुआ करते थे। मार्शल (1670) ने भी उत्कृष्ट खानपान के बर्तनों का उल्लेख किया है।

देश के कई भागों में शीशे का सामान भी बनाया जाता था। भारतीय कारीगर साबुन, हाथी दाँत और सीप की वस्तुएँ तथा सींघ से भी विभिन्न चीजें आदि बनाया करते थे।

कई शिल्प वन आधारित थे, इनमें से एक लाख था। लाख का उपयोग चूड़ी बनाने, दरवाजों, खिड़कियों, खिलौने को रंगने और लाल रंग बनाने के लिए किया जाता था। यह बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा, मालवा, गुजरात, मालाबार, आदि के जंगलों से निकाला जाता था। बंगाल लाख सबसे अच्छा माना जाता था। सूरत में लाख की चूड़ियाँ और खिलौने बनाए जाते थे। यह मुहर लगाने के काम भी आता था।

6.6 उत्पादन का संगठन

विवेच्य काल में भारत में कारीगरों के व्यक्तिगत प्रयास से लेकर कारखाने तक की व्यवस्था मौजूद थी। शिल्प की जरूरतों और आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न शिल्पों और उद्योगों में उत्पादन के संगठन में विभिन्नताएँ थीं।

ग्रामीण कारीगर : गाँवों की जरूरतों को पूरा करने वाली वस्तुओं का निर्माण कारीगर करता था और वह जजमानी व्यवस्था नामक ग्रामीण व्यवस्था का एक नियमित अंग था। इनमें लोहार, कुम्हार और चर्मकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। आमतौपर पर उन्हें उनकी सेवा के बदले अनाज दिया जाता था। वे कृषि से जुड़े औजार उपलब्ध कराते थे और उनकी मरम्मत करते थे। दक्खन और महाराष्ट्र में यह व्यवस्था ज्यादा संगठित थीं जहाँ ग्रामीण कारीगरों और सेवकों को बलूतेदार कहा जाता था। दक्खन में अलूतेदार नामक एक और समुदाय था, जिन्हें भी कई प्रदेशों में गाँव के कारीगरों की श्रेणी में शामिल किया गया था।

ग्रामीण इलाकों में मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रवेश और इसकी बढ़ती माँग के कारण जीवन यापन संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया। तपन राय चौधरी के अनुसार, कम से कम सत्रहवीं

शताब्दी में, एक गुजर बसर पर आधारित अर्थव्यवस्था में फर्क आया। इस पद्धति में कारीगर अपना माल बनाया करता था और उसे उपज का एक हिस्सा मिलता था। अब वह अपना सामान नगद बेचने लगा और अतिरिक्त काम के लिए अलग से नगद या वस्तु रूप में भुगतान लेने लगा। पर इसके साथ–साथ ग्रामीण उत्पाद में हिस्सा या राजस्व मुक्त जमीन का एक भाग देने की प्रथा भी कायम थी।

तपन राय चौधरी बताते हैं कि संभवतः अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक लम्बी और मध्यम दूरी के व्यापार के लिए सारा उत्पादन इन कारीगरों पर निर्भर था, जो जजमानी व्यवस्था में पूरी तरह गुंथे थे।

माँग बढ़ने के साथ ग्रामीण कारीगर शहरी बाजारों में भी अपना माल भेजने लगे। ग्रामीण कारीगर इधर–उधर घूमते रहते थे और एक गाँव से दूसरे गाँव या पास के शहर में जाते रहते थे।

बाजार के लिए उत्पादन

कारीगर स्वतंत्र और व्यक्तिगत तौर पर बाजार के लिए उत्पादन करता था। अलग–अलग वस्तुएँ अलग–अलग कारीगर बनाया करते थे, और उन्हें बाजार में बेचा जाता था। एक डच यात्री पेल्सर्ट (1623) बताता है कि विभिन्न शिल्पों से जुड़े कारीगरों की लगभग सौ विशेषीकृत श्रेणियाँ थी। वस्त्र उद्योग में उच्च कोटि की विशेषता देखने को मिलती है। वस्त्र के उत्पादन के प्रत्येक चरण से एक अलग समुदाय जुड़ा था। मसलन रूई धुनना, सूत कातना, कपड़ा बुनना, सिल्क का धागा बनाना, विरंजन, रंगाई, छपाई से अलग–अलग विशेषीकृत समुदाय जुड़ा हुआ था। गाँव के किसान भी कई प्रकार की चीजें बनाते थे और इसमें उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। कृषि आधारित सभी उद्योगों जैसे नील, चीनी, रेशम और सूती धागों की कताई, नमक और शोरा का निर्माण, से वे सक्रिय रूप में जुड़े हुए थे।

उत्पादन की स्थानीयता एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। जैसाकि पहले जिक्र किया जा चुका है, प्रत्येक क्षेत्र में किसी खास प्रकार के शिल्प का ही उत्पादन होता था। यूरोपीय व्यापारियों के अनुसार उन्हें अलग–अलग सामान लेने के लिए अलग–अलग जाना पड़ता था। केवल मसूलीपट्टम और बनारस में सात–सात हजार बुनकर थे। इसी प्रकार कासिम बाजार में 2500 रेशमी बुनकर थे।

कारीगर व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादन करने के लिए कच्चा माल खुद प्राप्त करता था और बने माल को खुद ही बेचने की भी व्यवस्था करता था। कारीगर या शिल्पी अपने घर में ही निर्माण कार्य करता था। इन कारीगरों के पास पूंजी कम होती थी। अतः व्यक्तिगत तौर पर वे कम माल तैयार कर पाते थे और व्यापारियों को इनसे माल लेने के लिए काफी प्रयास करना पड़ता था। माल की गुणवता में भी अन्तर होता था।

दादनी

इन समस्याओं के कारण उत्पादन के नए तरीके दादनी का जन्म हुआ। इसमें व्यापारी कारीगरों को अग्रिम राशि दे दिया करते थे, और कारीगर दिए हुए समय पर माल देने का वादा करता था। यहाँ व्यापारी अपनी पसंद कारीगर को बता सकता था। कपड़ा उद्योग में यह प्रथा इतनी जम गयी थी कि कारीगरों को अग्रिम दिए बिना कपड़ा प्राप्त करना मुश्किल था। सत्रहवीं शताब्दी में दक्खन में बुनकर उद्योग पर व्यापारी हावी हो गए। ऐलोव के

अनुसार दक्षिण भारत में ''शिल्प उद्योगों पर व्यापारिक पूंजी का प्रभाव काफी फैल चुका था। वस्तुतः कोरोमंडल तट के पास बसे सभी कारीगरों पर एक या दूसरे व्यापारी का नियत्रंण था। 17वीं शताब्दी में, कासी वीरन्ना सबसे बड़ा व्यापारी था। पालिकट को छोड़कर मद्रास से लेकर आलमगांव तक का पूरा तटीय प्रदेश उसके नियत्रंण में था। इस क्षेत्र की बुनकर बस्तियों को वीरन्ना गाँवों के नाम से जाना जाता था।

दादनी व्यवस्था में उत्पादित वस्तु की गुणवता और मात्रा निर्धारित करने में खरीदार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता था। कारीगरों को कच्चा माल खरीदने के लिए पर्याप्त पूंजी मिल जाती थी। उनके माल की बिक्री का भी आश्वासन मिल जाता था, पर बिक्री पर उसका नियत्रंण नहीं रह जाता था।

उत्पादक केन्द्र (कारखाने)

1620–21 में अंग्रेजों ने पटना में इस प्रकार की पहली इकाई स्थापित की जहाँ रेशम के धागे बनाए जाते थे और इसमें 100 मजदूर काम करते थे। कासिम बाजार में डच कम्पनी ने अपने रेशम के कारखाने में 700–800 बुनकरों को काम दे रखा था। पर इस प्रकार की व्यवस्था इक्का–दुक्का स्थानों पर ही उपलब्ध थी (देखिए ए.जे. कैसर *''द रोल ऑफ ब्रोकर्स इन मेडिवल इंडिया''*)। जहाज निर्माण और गृह निर्माण भी ऐसा क्षेत्र था जहाँ एक साथ काफी लोग काम करते थे। दक्खन और दक्षिण भारत के लगभग सभी जहाज निमाण केन्द्रों में एक छत्र के नीचे और एक निगरानी तहत अनेक कारीगर और मजदूर काम करते थे। गृह निर्माण में भी जहाज निर्माण की तरह कई लोग एक निगरानी में काम करते थे। (देखिए ए. जे. कैसर, *Ship Buildiing in the Mughal Empire during the 17th Century'* and *Building Construction in Mughal India, the Evidence from Paintings)*

दो अन्य उत्पादक क्षेत्रों में भी काफी संख्या में कार्मिक (हालांकि वे बहुत निपुण नहीं होते थे) एक साथ कार्य करते थे। पहला, गोलकुण्डा और दक्खन की हीरे की खानों में 30,000 से 60,000 लोग काम करते थे। यहाँ खान निरीक्षक शासक से जमीन के टुकड़े किराए पर ले लेता था। ये सभी अपने जमीन के टुकड़ों पर 200 से 300 खनिजों से काम करवाते थे। इन खनिकों को प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती थी। इसी प्रकार खनन के मौसमः (दिसम्बर–जनवरी) में बिहार के हीरे की खानों में लगभग 8000 आदमी काम करते थे। आमतौर पर ये किसान या खेतिहर मजदूर होते थे, जो अपने खेतों में फसल रोपकर यहाँ आते थे।

शोरा के उत्पादन में भी एक साथ कई लोग काम करते थे। इस मामले में भी एक मालिक के निरीक्षण में छोटे–समूहों में कई लोग काम करते थे। बिहार में इन्हें नूनियाँ कहा जाता था। बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए डच और अंग्रेजों ने शोरा निकालने के लिए अपनी इकाइयाँ स्थापित की। शोरे की इन शोधक इकाइयों में यूरोपीय कम्पनियाँ सारे साधन उपलब्ध कराती थीं और कार्मिक उनके साधनों से ही काम करते थे।

शाही कारखाने

विवेच्य काल में शाही कारखाने उत्पादन की एक प्रमुख विशेषता थे। ये कारखाने 14–15वीं शताब्दियों में भी कार्यरत थे। ये कारखाने राजकीय व्यवस्था का हिस्सा थे और कुलीन वर्गों के लोग भी अपने कारखाने चलाते थे। इनमें बनी चीजों का निर्माण राजकीय घरेलू आवश्यकताओं और दरबार के लिए हुआ करता था। कई उच्चस्थ कुलीनों के अपने कारखाने

हुआ करते थे। आमतौर पर इनमें महंगी और विलास की वस्तुओं का उत्पादन होता था। निपुण कारीगर एक छत के नीचे काम करते थे और उत्पादन करते थे। राज्य के अधिकारी उनका निरीक्षण करते थे। कारीगारों के पास इतनी पूंजी नहीं थी कि वे राजकीय जरूरतों के अनुसार वस्तुओं का निर्माण कर सकें। इस जरूरत को पूरा करने के लिए कारखानों का निर्माण हुआ। इन बहुमूल्य वस्तुओं के निर्माण के लिए बहुमूल्य कच्चे माल की जरूरत होती थी और शासन नहीं चाहता था कि ये बहुमूल्य वस्तुएँ कारीगर अपने घर ले जाकर रखें। यहाँ हम इन कारखानों की कार्य पद्धति पर विस्तार से विचार नहीं करने जा रहे हैं, क्योंकि इनमें बाजार के लिए नहीं बल्कि राजकीय और व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन होता था।

हमने देखा कि विवेच्य काल के दौरान उत्पादन की प्रक्रिया में परिवर्तन आ रहा था। तपन राय चौधरी के कथन से इसका निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है, "मुगल भारत में उत्पादन का संगठन अपरिवर्तित नहीं रहा। बहुत कुछ घटित हो रहा था, पर यह सब बहुत सीमित था। नये विकास हुए पर अतीत से नाता नहीं टूट सका। परम्परागत प्रक्रिया अभी भी जारी थी। इसके बावजूद तकनीक की अपेक्षा संगठन में अधिक आधारभूत बदलाव आया।"

बोध प्रश्न–3

1) जजमानी व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

i) दादनी ....

....

....

ii) कारखाने ....

....

....

iii) शाही कारखाना..

....

....

6.7 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में गैर–कृषि उत्पादन पर विचार किया। यह क्षेत्र काफी विकसित था और इसकी अलग पहचान थी। यहाँ वस्त्र उद्योग सबसे बड़ा उत्पादक क्षेत्र था। सूती वस्त्र की काफी मांग थी और इससे इस उद्योग को काफी बढ़ावा मिला। नील और चीनी कृषि आधारित उद्योग थे।

नमक के उत्पादन से घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी। शोरा उद्योग में भी बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था। इसे निर्यात भी किया जाता था। लोहे और ताँबे का भी उत्पादन होता था। चाँदी का उत्पादन इसके मुकाबले कम होता था। इस काल के दौरान जहाज निर्माण उद्योग का भी उल्लेखनीय विकास हुआ।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि गैर–कृषि क्षेत्र में कारीगर व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादन करता था। कुछ क्षेत्रों, जैसे शोरा और हीरा खनन में एक साथ निगरानी में काफ़ी लोग काम किया करते थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने रेशम के धागों को निकालने के लिए कुछ अग्रिम राशि देने की प्रथा पूरी तरह विकसित थी। राजकीय कारखाने में राजपरिवार और कुलीन वर्गो की जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन किया जाता था।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. भाग 6.2.1ः गुजरात, बंगाल और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग प्रमुख कपड़ा उद्योग केन्द्र थे।
2. भाग 6.2.1ः बंगाल में काफी मात्रा में रेशम का धागा बनाया जाता था और उसे देश के अन्य भागों में बनुने के लिए भेजा जाता था।
3. भाग 6.2.1ः बयाना और सरखेज की दो महत्त्वपूर्ण कोटियाँ।

बोध प्रश्न–2

1. भाग 6.3.1ः 17वीं शताब्दी में बिहार, बंगाल और गुजरात में बड़ी मात्रा में उत्पादक होता था।
2. देखिए उपभाग 6.3.1 और 6.3.1

बोध प्रश्न–3

1. भाग 6.5 जजमानी व्यवस्था में कारीगरों को उनकी सेवा के लिए ग्राम समुदाय द्वारा भुगतान किया जाता था।
2. देखिए भाग 6.6

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Chaudhuri Tapan Ray and Irfan Habib, eds. 1982. *Cambridge Economic History of India*, Vol.-I. New Delhi: Cambridge University Press.

Sahai, Nandita Prasad. 2006. *Politics of Patronage and Protest: The State, Society, and Artisans in Early Modern Rajasthan*. New Delhi: Oxford University Press.